व्यक्तित्व विकास में साहित्य एवं कलाओं की भूमिका

डॉ. नीलम अधिकारी
सहायक प्रोफेसर
एन०बी०जी०एस०एम० कॉलेज,
सोहना (गुरूग्राम)

मानव जीवन में साहित्य एवं कला का उत्कृट स्थान है। साहित्य समाज का दर्पण है जिसका निर्माण 'भाा' के बिना अधूरा है। 'भाा' मानव की सूक्ष्म भावनाओं (भावों) की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है। भाा के ज्ञान के बिना किसी भी 'कला' का जन्म होना असम्भव है, क्योंकि जब तक मानव अज्ञानता की अवस्था में रहेगा, तब तक उसे किसी भी कला का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। भाा से ही मनुय को ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान के पावन प्रकाा से 'कलाओं' का जन्म होता है।

भारतीय संस्कृति में साहित्य की आत्मा में सौंदर्य का निवास है, वही सौंदर्य कलाओं को अभिव्यक्त करता है। 'कलाएँ' साहित्य का अलंकार है। अतः 'साहित्य' से प्राप्त होने वाला आनन्द केवल एक व्यक्ति या वर्ग तक सीमित नहीं होता बल्कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति जिसमें अर्थ बोध की क्षमता हो उसका अनुभव कर सकता है। 'साहित्य' का उद्देय हमारी अनुभूतियों की तीव्रता को बढ़ाना है अर्थात् साहित्य, सौंदर्ययुक्त भाा के माध्यम से रचित वह सुंदर कृति है जिसका अर्थबोध से मानव को रसानुभूति का बोध होता है।

साहित्य मानव सभ्यता का वह प्रकाा स्तम्भ है, जिसके आलोक की रमियाँ, अज्ञानता, जड़ता और मूढ़ता के अंधकार को दूर करके उसे ज्ञान, चौतन्य आदि के पथ पर अग्रसर करती है। भले ही 'साहित्य' या 'काव्य' देवासुर संग्राम में समुद्र मंथन से निकला कोई रत्न न हो परंतु मानव–जीवन सागर में खिला एक अद्‌भुत कमल अमूल्य अमृतधारा व अमूल्य मणि है जिसको मुख्य प्रयोजन जीवन संवेदनाओं को प्रकट करना अर्थात् उच्च मानवीय संवेदनाओं का आनन्द प्राप्त करना है। आत्माभिव्यक्ति, महत्व या प्रभुत्व–कामना, या प्राप्ति, धनार्जन साहित्य सृजन की मूल प्रेरणाएँ होती है परंतु साहित्यकार की मूल प्रेरणा भी उदात्त भावनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति का आत्मिक आनन्द प्राप्त करना है।

उदात्त भावानन्द या उदात्त भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति से काव्य में सत्यं, ाविं और सुंदरम् की सिद्धि स्वतः ही होती है। उदात्त भावनाओं में लोकहित अर्थात् ाविं विद्यमान रहता है क्योंकि उच्च मानवीय भावनाएँ लोकमंगल की विधायक होती है। जीवन के सत्य की अभिव्यक्ति ही सत्य है और उदात्त मानवीय भावनाओं में जीवन सत्य निहित है। जहाँ तक सुन्दरम् का संबंध है यह स्पट है कि उदात्त भावनाएँ सुंदर स्पृहणीय होती है, उनमें सौंदर्य तत्व का समावेा होता है। इस प्रकार काव्य या साहित्य का उद्देय सत्यं, ाविं, सुन्दरम् की प्राप्ति है।

'साहित्य' का व्यापक अर्थ–

'साहित्य' या 'काव्य' ाब्द से अभिप्राय सब प्रकार की गद्य–पद्यमयी भावानन्ददायक रचनाओं से परिपूर्ण है। इस व्यापक अर्थ रूप में 'काव्य' ाब्द वर्तमान 'साहित्य' ाब्द का पर्यायवाची है। 'साहित्य' ाब्द संस्कृत में लिपिबद्ध रचनाओं या काव्य के लिए बहुत बाद में प्रचलित हुआ। वर्तमान काल में साहित्य अपने व्यापक और सीमित दोनों ही अर्थ में प्रयुक्त होता है। यह अंग्रेजी के 'लिट्रेचर' ाब्द का पर्यायवाची है। यह अपने व्यापक अर्थ में 'ज्ञानराि के संचित कोा' अर्थात् 'वाङ्मय' का बोध कराता है किंतु अपने सामान्य सीमित अर्थ में 'साहित्य' से अभिप्राय कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि विधाओं में रचित भावानन्द का ललित साहित्य (सौंदर्य) हैं।

'वाङ्मय' शब्द का प्रयोग हमारे यहाँ सभी प्रकार के वाणी विलास में प्रयोग किया जाता है जिसे दो भागों काव्य (भावरस पूर्ण ललित साहित्य) तथा ाास्त्र (बुद्धि या ज्ञान प्रधान रचनाएँ) में बाँटा गया है।

'साहित्य' ाब्द की व्युत्पत्ति 'सहित' से मानी गई है। 'सहित' का अर्थ – साथ, संगयुक्त आदि। 'सहित' का भाववाचक रूप ही साहित्य है। 'साहित्य' के विाय में भारतीय एवं पाचात्य विद्वानों ने अपने–अपने विचार प्रस्तुत किए है–

भारतीय विद्वानों द्वारा प्रस्तुत 'साहित्य' की परिभाा–

(1) भामह – शब्द' और 'अर्थ' मिलकर 'काव्य' होता है।

(2) दण्डी – इट अर्थ से विभूति पद–समूह ही काव्य–ारीर है।

(3) वामन – 'काव्य' (साहित्य) ाब्द, गुण तथा अलंकार से संस्कृत ाब्द तथा अर्थ के लिए प्रयुक्त होता है।

(4) राजोखर – 'गुण' और 'अलंकारों' से युक्त वाक्य ही 'काव्य' है।

(5) कुन्तक – शब्द' और 'अर्थ' का मनोहर विन्यास साहित्य है जिसमें शब्द और अर्थ परस्पर इतने संतुलित हों कि न तो कोई न्यून

हो और न कोई अधिक हो।

(6) मम्मट – वह ाब्द और अर्थ जो दोा से रहित हो, गुण से मंडित हो, भले ही कहीं अलंकार ान्य हो 'काव्य' (साहित्य) है।

(7) विवनाथ – रसात्मक वाक्य, काव्य होता है।

(8) जगन्नाथ – रमणीय अर्थ का प्रतिपादक ाब्द 'काव्य' है।

(9) श्री जयांकर प्रसाद – "काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका संबंध विलोाण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है।"

(10) महादेवी वर्मा – काव्य में सत्य और सौंदर्य का सामंजस्य स्वीकार करते हुए कहा है– "काव्य में कला का उर्त्का एक ऐसे बिंदु तक पहुँच गया, जहाँ से वह ज्ञान को भी सहायता दे सका, क्योंकि सत्य काव्य का साध्य और सौंदर्य उसका साधन है।"

(11) बाबू याम सुन्दर दास – काव्य (साहित्य) को ज्ञानयुक्त ाास्त्रीय साहित्य से पृथक् करने वाला तत्व काव्य की कलात्मक आहलादकता को बताते हुए कहा है– "किसी पुस्तक को हम साहित्य या काव्य की उपाधि तभी दे सकते हैं जब जो कुछ उसमें लिखा गया है वह कला के उद्देयों की पूर्ति करता हो।"

इसी प्रकार पाचात्य विद्वानों ने 'साहित्य' की परिभाा को अपने–अपने अनुसार प्रस्तुत किया है–

(1) अरस्तू – भाा के माध्यम से होने वाली अनुकृति 'काव्य' (साहित्य) है।

(2) सिडनी – काव्य वह अनुकरणात्मक कला है जिसका लक्ष्य ाक्षा देना और आनन्द देना है।

(3) जे. डेनिस – 'काव्य' भावात्मक एवं विस्तृत भााण के द्वारा प्रकृति की अनुकृति है।

(4) कालरिज – 'काव्य' रचना का वह विशिट प्रकार है जिसका तात्कालिक लक्ष्य ज्ञान प्रदान करना न होकर प्रसन्नता प्रदान करना होता है।

(5) हेजलिट – 'काव्य' कल्पना और भावों की भाा है।

(6) ोली – 'काव्य' सर्वाधिक सुखी एवं श्रेठतम हृदयों के श्रेठतम क्षणों का लेखा जोखा है।

(7) मैकाले – 'काव्य' वह कला है जो कि ाब्दों के प्रयोग के द्वारा कल्पना का माया जाल बुनती है।

अतः 'काव्य' की संक्षिप्त, सरल, निर्भ्रांत परिभाा कुछ इस प्रकार दी जा सकती है – "समर्थ भाा–ौली में उदात्त या स्पृहणीय भावों की अभिव्यक्ति ही 'काव्य' है।"

'काव्य' (साहित्य) एवं 'कला' दोनों का मानव जीवन से अटूट रिता है। मानव प्रकृति अथवा स्वभाव से जिज्ञासु, सृजनाील एवं सौंदर्य के प्रति आर्कााित रहा है। सौंदर्य के प्रति प्रेरित होकर सुन्दर कलाकृतियों का सृजन करना मानव का स्वभाव रहा है। मानव की इसी सौंदर्यात्मक, भावानात्मक अभिव्यक्ति के कारण 'कला' का सृजन सम्भव है। प्रकृति के सौंदर्य से प्रभावित होकर मानव ने सुंदर कलाकृतियों का निर्माण किया है जो कि उसकी सृजनात्मक ाक्ति का मिला–जुला रूप है। अतः जिस कृति का सृजनकर्त्ता मानव है वह 'कला' है। मानव जब अपने भावों को व्यक्त करने के लिए किसी माध्यम का प्रयोग करता है तो 'कला' का सृजन आरम्भ होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि मानव का अनुभव 'कला' को निर्मित करता है जिसके माध्यम से विचारों, भावों की अभिव्यक्ति होती है। भारतीय साहित्य में प्राचीनकाल से ही 'कला' ाब्द का प्रयोग होता रहा है। 'कला' शब्द 'कलाधातु से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ 'सुन्दर' व 'मधुर' को दार्ाता है। 'कला' ाब्द अपने आप में इतना अधिक व्यापक है जिसके अंतर्गत वे सभी मानवीय क्रियाएँ सम्मिलित है जिनमें कौाल अपेक्षित हो अर्थात् कला ाारीरिक एवं मानसिक कौाल (मानवीय क्रिया) से परिपूर्ण कृत्रिम निर्माण है जिसका विाा लक्षण ध्यान दृटि से देखना, चिंतन करना, संकलन करना, स्पट रूप से प्रकट करना है।

'कला' ाब्द के समानार्थी रूप में 'ाल्प', 'आर्ट', 'कौाल' ाब्दों का प्रयोग प्राचीन साहित्यों में हमें देखने को मिलता है। 'अटाध्यायी' तथा बौद्ध एवं जैन ग्रंथों में जिस 'ाल्प' ाब्द का प्रयोग किया गया है वह 'कला' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अंग्रेजी भाा में 'कला' ाब्द के लिए 'आर्ट' ाब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ पैदा करना, ठीक करना अथवा बनाना है। लैटिन में 'आर्ट' ाब्द का प्रयोग किसी वस्तु निर्माण हेतु किया गया है जोकि ाारीरिक एवं मानसिक कौाल से परिपूर्ण हो। समय के बदलते परिवेा में 'कला' ाब्द का प्रयोग विस्तृत रूप में होने लगा और इसके अंतर्गत वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला एवं काव्यकला आदि को समाहित कर लिया गया। कला का एक क्रमिक विकास है जिसके अंतर्गत चार चरणों का समावेा है–

1) आंतरिक इच्छा का होना।

2) इच्छा पूर्ति हेतु पूर्ण चेटा करना।

3) इच्छा, चेटा एवं क्रिया द्वारा कलाकृति का निर्माण होना।

4) कलाकृति के निर्माण पचात् र्दाक पर पड़ने वाला प्रभाव।

उपर्युक्त सभी चरणों के माध्यम से मानव जो भी कार्य करता है अर्थात् अपने भावों तथा विचारों को प्रकट करता है तब 'कला' का निर्माण होता है।

'कला' के संबंध में महान चिंतकों के विचार–

मैथिलीारण गुप्त के ाब्दों में – "अभिव्यक्ति की कुाल ाक्ति ही कला

है।" (साकेत, पंचम सर्ग) अर्थात् मन के अंतःकरण की सुंदर प्रस्तुति ही 'कला' है।

महात्मा गांधी के अनुसार – कला, मानव जीवन को सुमार्ग पर ले जाने वाली वह क्रिया है जो भावों और विचारों से परिणीत है।

टालस्टाय के अनुसार – 'कला' एक मानवीय चेटा है। कला द्वारा मनुय अपने जीवन में प्राप्त हुए अनुभवों को ज्ञानपूर्वक संकेतों के माध्यम से अभिव्यक्त करने में सक्षम है।

प्लेटो के अनुसार – 'कला' नकल करती है। नकल द्वारा बनाई गई कलाकृति को प्लेटो बेकार मानते हैं। उनके अनुसार कला वह है जो परमात्मा की अनुभूति कराए, वही उच्च है।

अरस्तु के अनुसार – 'कला' प्रकृति का अनुकरण करती है। नकल करके किसी वस्तु को सीखना मानव का स्वभाविक गुण है। बचपन से ही मानव दूसरों द्वारा की गई चेटाओं का अनुकरण करता है तथा उसे सीखता है। अतः कला यथार्थ की अनुकृति है। 'कला' ज्ञान का स्रोत है।

क्रोचे के अनुसार – 'कला' अंतरज्ञान है। यह अंतरज्ञान उच्च स्तर का होता है जो व्यवहारिक जीवन का आधार है।

हीगेल के अनुसार – 'कला' का मुख्य लक्ष्य मानव को सत्य के पथ पर अग्रसर करना है। हीगेल कला को आध्यात्मिक तथा इंद्रिय तत्वों का मिश्रण मानते हैं।

'कला' का वर्गीकरण –

हम सभी इस बात से भली भांति परिचित है कि सभी मानवीय क्रियाएँ कलाओं से परिपूर्ण है। अतः 'कला' का क्षेत्र अत्यंत विाल है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए 'कला' का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया गया है–

वैदिक काल में कलाओं का वर्गीकरण नहीं था। 'कला' के स्थान पर 'ल्पि' ाब्द प्रयुक्त होता था। पंचाला ने सर्वप्रथम कलाओं का वर्गीकरण दो भागों में किया–

मूल कलाएँ

अंतःकरण कलाएँ

मूल कलाएँ 54 मानी गई हैं। अंतःकरण कलाएँ 514 बताई गई हैं जो मूल कलाओं पर आश्रित थी। वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में कलाओं के 64 भेद बताएँ है। वात्स्यायन ने कलाओं को वर्गीकृत नहीं किया है जबकि उनके टीकाकार 'याोधर' ने मूल रूप से कलाओं को दो भागो 'मूल कला' एवं 'अंतर कला' में विभाजित किया है। याोधर ने 518 कलाओं का उल्लेख किया है जिनमें 64 मूल कलाएँ है।

'वात्स्यायन' का 'कामसूत्र' ही ऐसा ग्रंथ है जिसमें कलाओं को एक व्यवस्थित रूप प्रदान किया है। 'ाुक्रनीति' में भी 64 कलाएँ बताई गई है। 'ललित विस्तर' में पुरूा कला 86 तथा अन्य 64 कलाओं के विाय में जानकारी प्राप्त होती है। 'प्रबंध कोा' के अनुसार कलाओं की संख्या 72 है।

क्षेमचन्द्र ने 'कला विलास' में कलाओं की संख्या सर्वाधिक निर्धारित करते हुए कहा है कि कला का प्रत्यक्ष संबंध मानव की कल्पना, सृजना एवं दानात्मक प्रवृत्ति से है, अतः इसके संदर्भ में संख्यात्मक भेदों के साथ अन्य भेदों का होना भी स्वाभाविक ही है।

'संस्कृत साहित्य' में ज्ञान को दो वर्गों 'विद्या' एवं 'उपविद्या' में बांटा गया है। 'विद्या' के अंतर्गत 'काव्य' को लिया गया है तथा 'उपविद्या' के अंतर्गत अन्य कलाओं को स्थान दिया गया है।

इसी प्रकार पाचात्य विचारकों ने भी कलाओं को विभाजित किया है। 'अरस्तु' ने कलाओं को तीन भागों 'आचरण वियक कला', 'ललित कला' एवं 'उदार कला' में बाँटा है। 'आचरण वियक कला' के अंतर्गत उन सभी कलाओं को सम्मिलित किया गया है जिनका उद्देय उपदेाात्मक रहा है। ये कलाएँ सत्य का बोध कराती हैं और समाज को अच्छे आचरण की ओर प्रेरित करती हैं। ये मानव जीवन का मुख्य अंग है। इनके द्वारा मानव जीवन के नैतिक मूल्यों को निर्धारित किया जाता है। 'ललित कला' वह कला है जो लालित्य से परिपूर्ण हो तथा जिनके माध्यम से सौंदर्यानुभूति का बोध हो। 'उदार कला' के अंतर्गत व्याकरण, तर्क, रेखागणित, संगीत तथा इतिहास आदि सभी का स्थान है। इसी प्रकार रूप के आधार पर कलाओं का विभाजन दो भागों में किया जा सकता है–(1) रूपात्मक कला एवं (2) श्रव्यात्मक कला।

(1) रूपात्मक कला – वह कला जो किसी निचित रूप में उभरकर सामने आती है उसे 'रूपात्मक कला' कहते है। जैसे वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला आदि।

(2) श्रव्यात्मक कला – वे कलाएँ जो श्रव्य अर्थात् सुनी जा सके श्रव्यात्मक कला के अंतर्गत आती है। ये मुख्यतः ध्वनि पर आश्रित होती है जैसे संगीतकला, काव्यकला आदि इन दोनों का आधार 'नाद' है। 'कला' ने सदैव मानव जीवन में सौंदर्य को बिखेरा है, चाहे वह किसी भी रूप में हो। कलाकारों ने सदियों से प्रकृति को सुन्दरता का मापदण्ड माना और इसी के आधार पर प्रकृति की अनुकृति की गई।

हीगेल ने भी कलाओं को तीन वर्गों में बाँटा है– (1) प्रतीकवादी कलाएँ (2) ाास्त्रीय कलाएँ (3) स्वच्छंदता वादी कलाएँ।

(1) प्रतीकवादी कलाएँ – इस प्रकार की कलाओं में कलाकार प्रतीक या चिन्ह के माध्यम से यथार्थ की अभिव्यक्ति व्यक्त करता है।

मूर्तिकला, वास्तुकला आदि इसके अंतर्गत सम्मिलित है।

(2) ाास्त्रीय कलाएँ – इन कलाओं में कलाकार आकार तथा विचारों के आपसी सामंजस्य को प्रस्तुत करता है। विचारानुरूप आकार की रचना की जाती है। वातावरण, समय, संस्कृति अर्थात् परम्परागत ढंग से कलाओं की अभिव्यक्ति इसके अंतर्गत आती है। जैसे–चित्रकला, मूर्तिकला।

(3) स्वच्छंदतावादी कलाएँ – हीगेल ने इस वर्ग की कलाओं को सर्वप्रमुख माना है क्योंकि ये कलाएँ मानव के विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति के साक्त माध्यम है। इन कलाओं में कलाकार को अपनी कल्पनाक्ति से स्वतंत्र भाव दर्ाने का अवसर प्राप्त होता है जैसे–संगीत कला, चित्रकला आदि।

कला का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। हर विद्वान ने अपने–अपने आधार पर कला को वर्गीकृत किया है। मुख्य रूप से मानव ारीर मन एवं मस्तिक के आधार पर ही कलाओं का वर्गीकरण किया गया है। परंतु अधिकतर व्यक्ति बुद्धि को ही सर्वाधिक महत्व देते हैं।

इसी आधार पर 'कला' को दो भागों में बाँटा गया है–(1) यांत्रिक कलाएँ (2) ललित कलाएँ।

(1) यांत्रिक कलाएँ – उपयोगी कलाएँ ही यांत्रिक कलाएँ कहलाती हैं। ये कलाएँ मानव जीवन के लिए उपयोगी होती है। ये भौतिक सुख प्रदान करती है। इन्हीं कलाओं के द्वारा दैनिक जीवन की आवयकता की चीजों की पूर्ति होती है। इन कलाओं में उद्देय की पूर्ति हेतु कल्पनाक्ति का प्रयोग होता है। जैसे किसी इमारत का निर्माण करने से पूर्व उसकी नींव को निर्धारित किया जाता है। नींव पर ही इमारत खड़ी होती है। इसलिए उसे मजबूत बनाने के लिए उसमें प्रयुक्त होने वाली सामग्री उत्तम होनी चाहिए, ताकि इमारत की नींव मजबूत रहे अर्थात् उसका आधार प्रबल हो।

(2) ललित कलाएँ – ललित कलाएँ कलाओं का एक विाा विभाजन है। इसके अंतर्गत पाँच कलाएँ आती हैं–संगीतकला, काव्यकला, मूर्तिकला, चित्रकला तथा वास्तुकला। ललित कलाओं को 'मनस्तत्त्व' की संज्ञा दी गई है अर्थात् 'मानसिक आनन्द' देना इसका उद्देय है। यह सौंदर्य को मूर्त रूप प्रदान करती हैं।

हम जानते है कि 'कला' का अर्थ कुछ उत्पन्न करना है, कुछ नवीन निर्मित करना है। कलाकार सत–चित आनंद की अनुभूति प्राप्त ज्ञान के आधार पर तथा अपनी सीमाओं के अंतर्गत, संपूर्ण ाल्पि विधान द्वारा अभिव्यक्त करता है। ये संपूर्ण प्रक्रिया ही 'कला' को परिभाति करती है। जब हम किसी कार्य को 'कला' की श्रेणी में रखते है तो उस कार्य का पहले मूल्यांकन किया जाता है। हर 'कला' में कुछ तत्वों का होना आवयक है। ये तत्व रूप एवं आकार, प्रमाण, भाव, लावण्य एवं उपमा हैं।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'कला' के तत्वों का वर्णन इस प्रकार किया है–

(1) आकार या रूप – संगीत, चित्र, मूर्ति आदि चाहे कोई भी कला हो उसकी कृति का एक निचित रूप व आकार होना चाहिए, क्योंकि जब तक कोई कार्य व्यवस्थित ढंग से नहीं किया जाएगा, तब तक वह कला नहीं कही जा सकती। इसलिए प्रत्येक कृति को एक निचित रूप अथवा आकार की आवयकता होती है।

(2) प्रमाण – कला के सभी अंगों व आयामों में प्रमाण का होना आवयक है अर्थात् कलाकार की कृति के प्रत्येक पहलू में एक सामंजस्य होना चाहिए।

(3) भाव – 'कला' की अभिव्यक्ति का सबसे प्रमुख आधार 'भाव' है। जब कोई कलाकार किसी कृति को बनाता है तो वह उसमें वही भाव भरता है जो वह व्यक्त करना चाहता है और देखने मात्र से उस कृति का भाव स्पट हो जाता है।

(4) लावण्य – रूप व प्रमाण 'लावण्य' को उत्पन्न करते है। जैसे हम किसी कृति को देखते ही कह उठते हैं वाह–क्या लाजवाब कृति है? यही 'लावण्य' को दर्ाता है।

(5) उपमा – 'कला' में सौंदर्य उत्पन्न करने का माध्यम 'उपमा' है। काव्य के अंतर्गत 'प्राण' रूप में कार्य करना 'उपमा' है। इनके अतिरिक्त विचार, ध्यान, कल्पना, आध्यात्मिकता, प्रकृति तथा प्रतीक आदि भी कला के तत्व है।

जिन कलाओं में ये तत्व सबसे अधिक मात्रा में पाए जाते है उन्हें ललित कलाएँ कहा गया है। ललित कलाएँ 5 मानी गई हैं–(1) संगीतकला (2) काव्यकला (3) चित्रकला (4) मूर्तिकला (5) वास्तुकला।

(1) संगीतकला – यह नादस्वरूप है जो स्थूल पदार्थों से मुक्त एक सूक्ष्म तत्व है। इसमें कलाकार ध्वनि के माध्यम से भावों को व्यक्त करता है। विव में हर स्थान पर यह कला उपस्थित है।

(2) काव्यकला – काव्य का आधार कल्पना है जो भौतिकता से मुक्त है। काव्य का आधार ाब्दिक संकेत (अक्षर) होते है। ये संकेत जीवन की घटनाओं, मन के विचारों आदि को अभिव्यक्त करते हैं। भााा द्वारा भाव की साधना ही 'काव्य' है।

(3) चित्रकला – 'चित्रकला' में भावों को रंगों आदि के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। इसमें मानसिकता का प्रयोग अधिक रहता है।

(4) मूर्तिकला – इस 'कला' में कलाकार मूर्ति बनाकर अपने भाव अभिव्यक्त करता है। पत्थर, धातु आदि को काटकर सजीव या निर्जीव पदार्थों के रूप में ढाला जाता है। परंतु गति के अभाव में वह

जीवन को पूर्णतया अंकित नही कर सकता।

(5) वास्तुकला – इसमें भावों की अभिव्यक्ति भवन के रूप में होती है। इसमें स्थूलता अधिक रहती है पर फिर भी भाव प्रकट करने की क्षमता रहती है।

इन्हीं कलाओं को ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर तीन वर्गों में बाँटा गया है– (1) दृयकला (2) श्रव्यकला (3) मिश्रित कला।

(1) दृयकला – जिन कलाओं का अनुभव मानव आँखों के द्वारा करता है वह कलाएँ दृयकला के अंतर्गत आती है जैसे–चित्रकला।

(2) श्रव्यकला – जिन कलाओं का अनुभव कानों द्वारा सुनकर होता है वे श्रव्य कलाएँ कहलाती हैं। जैसे–संगीत कला, काव्य कला आदि।

(3) मिश्रित कला – इस प्रकार की कलाओं के अंतर्गत वे सभी कलाएँ आती है जिनका अनुभव करने के लिए हम ज्ञानेन्द्रियों पर आश्रित होते हैं जैसे नृत्यकला आदि।

इसके अतिरिक्त विद्वानों ने कलाओं के और भी कई वर्ग बनाएँ है जैसे स्थिर तथा अस्थिर कलाएँ, प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कलाएँ, सजावटी तथा वर्णित कलाएँ आदि।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कलाएँ सौंदर्य को मूर्त रूप प्रदान करती हैं। इन कलाओं का उद्देय इन्द्रिय सुख के साथ–साथ मानसिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक सुख प्रदान करना है। 'कला' जीवन को 'सत्यम् ाविम् सुन्दरम्' की ओर उन्मुख करती है। 'कला' उस महासागर की भांति है जिसका कोई छोर नही यह अपने भीतर अनेक विधाओं को समेटे हुए है।

साहित्य एवं कला का मानव जीवन से अटूट संबंध–

समस्त जगत अपने भौतिक रूप में सतत् परिवर्तनील है। कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है। यह दूसरी बात है कि कही परिवर्तन की गति इतनी सूक्ष्म और मन्थर है कि दोकालबद्ध मनुय अपनी सामान्य इन्द्रियों के द्वारा उसे पकड़ नहीं पाता और अनुभव करता है कि कुछ चीजे परिवर्तनील है। मनुय जिस संसार में रह रहा है उसमें उसके अस्तित्व के लिए पग–पग पर चुनौतियाँ है जिनका सामना उसे करना ही होगा। समाज के यथार्थ और आर्दा 'साहित्य' के अंतर्गत समाहित है। मनुय जैसा है, जैसा चाहता है इसका चित्रांकन साहित्य करता है। साहित्य निर्माण में 'भाा' का विा महत्व है। 'भाषा' ज्ञान के अभाव में 'कला' का जन्म सम्भव नहीं क्योंकि अज्ञानता की अवस्था में मानव को 'कला' ज्ञान सम्भव नहीं है। 'भाा' के द्वारा मानव को ज्ञान प्राप्ति होती है और ज्ञान प्राप्ति के माध्यम से कलाओं की उत्पत्ति होती है। भारतीय संस्कृति में साहित्य की आत्मा सौंदर्य से अलंकृत है और यही सौंदर्य 'कलाओं' को अभिव्यक्त करने में सक्षम है। अतः 'साहित्य' द्वारा सौंदर्यनुभूति केवल एक व्यक्ति या वर्ग तक सीमित नहीं है बल्कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति जिसमें अर्थबोध की क्षमता हो उसका अनुभव कर सकता है। 'साहित्य' के माध्यम से राट्रीय एकता तथा विवबंधुत्व स्थापित कर सकते हैं। 'साहित्य' में भूतकाल की गूंज, वर्तमान का प्रतिबिम्ब और भविय के निर्माण की ाक्ति होती है। मनुय एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर वह अपने भावों और विचारों को वाणी, चित्र तथा संकेत के माध्यम से व्यक्त करता है। जब वह वाणी के माध्यम से अपने विचार या भाव व्यक्त करता है तब उसके द्वारा उच्चारित भाव ाास्त्र व साहित्य का रूप ले लेते है। काव्य अर्थात् साहित्य के अंतर्गत सम्पूर्ण लोकजीवन तथा सामाजिक आचरण की पुनर्रचना की जाती है। इस पुनर्रचना के अंतर्गत समाज की व्यवहारिक प्रतिपालन बिम्बित होता है और यही बिम्बन सम्पूर्ण समाज के लिए उपयोगी है। 'काव्य' यह निर्दो नहीं देता कि क्या करणीय है और क्या करणीय नहीं। वह रचना के अंतर्गत एक परिस्थिति उत्पन्न करता है और इस परिस्थिति को कला तथा कल्पना कौाल के द्वारा निर्मित करके रचना के लक्ष्यानुसार आचरण करने के निमित्त पाठक को विवा कर देता है। अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय वाङ्मय में कला के साथ साहित्य को हमेाा प्रस्तुत किया गया है।

अरस्तू ने सर्वप्रथम 'काव्य' को 'कला' के अंतर्गत माना है। काव्य की आत्मा रस है और 'रस' की निविड़िता श्रेष्ठ काव्य को जन्म देती है। प्राचीनकाल में भारतीय चिन्तकों ने जीवन का परम लक्ष्य आनन्द की उपलब्धि माना है फलतः साहित्य और कला इसी से अंतरभूत है। संगीतकला, काव्यकला, चित्रकला इन सभी कलाओं के स्वरूप के मूल में रचना विद्यमान है। एक ाक्षिक जिस प्रकार अपने अनुभवों से विद्यार्थियों को विाय विाटि एवं व्यवहारिक ज्ञान की जानकारियाँ प्रदान करता है उसी प्रकार भाव का दर्शन हमें कला में होता है। कलाएँ तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का दर्पण होती है। भर्तृहरि के अनुसार–

"साहित्यसंगीतकला विहीनः साक्षात्पुाः पुच्छविााणहीनः"

अर्थात् साहित्य एवं संगीत आदि कलाओं से विहीन मनुय साक्षात् पु के समान है।

संदर्भ सूची

झारी, डॉ० कृणदेव, 1970, साहित्यिक निबंध, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्लीरू नई सड़क

गुप्त, डॉ० गणपतिचन्द्र, 1971, साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन, नेानल पब्लिागि हाउस, दिल्ली (दरियागंज)

महाजन, डॉ० अनुपम, भारतीय ाास्त्रीय संगीत एवं सौंदर्यास्त्र

विरंजन, डॉ० राम, समकालीन भारतीय कला